जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

सर्वप्रकार के स्नेह तोड़कर स्वयं में ही समा जाने में सार है।

- बिन्दु में सिंधु, पृष्ठ-21

वर्ष : 25, अंक : 19 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जनवरी (प्रथम) 2003 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

विधान एवं शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

देवलाली (महा.) : यहाँ दिनांक 24 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2002 तक श्रीमती दमयन्तीबेन मीठालाल जुगराज जैन, मुम्बई परिवार की ओर से ऋषिमण्डल विधान एवं शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के समयसार पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, ब्र. हेमचन्दजी 'हेम' भोपाल, पण्डित दिनेशभाई शाह एवं डॉ. उज्ज्वला शाह मुम्बई के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ समाज को मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित मनीषजी शास्त्री रहली, पण्डित अनिलजी 'धवल' भोपाल एवं पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर ने सम्पन्न कराये। **- कान्तिभाई मोटाणी**

रविवारीय गोष्ठियाँ सानन्द सम्पन्न

जयपुर : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रांगण में दिनांक 15 दिसम्बर 2002 को आयोजित एकादशम रविवारीय विचार गोष्ठी का विषय 'नयचक्र : एक अनुशीलन' रखा गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता महाविद्यालय के व्याख्याता पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर ने की। अध्यक्षीय उद्बोधन के रूप में उन्होंने कहा कि जिनवाणी के मर्म को समझने के लिये मात्र नयों के भेद-प्रभेदों से परिचित होना ही पर्याप्त नहीं है; अपितु उसमें कुशलता प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रथम प्रयंक जैन रहली तथा द्वितीय सौरभ जैन शहपुरा चुने गये। गोष्ठी का संचालन आशीष जैन विदिशा ने एवं संयोजन सुदीप तलाटी ने किया।

2. दिनांक 22 दिसम्बर को आयोजित रविवारीय विचार गोष्ठी का विषय 'कर्म सिद्धान्त : एक अनुशीलन' रखा गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता इस विषय के मर्मज्ञ विद्वान ब्र. यशपालजी जैन जयपुर ने की। अध्यक्षीय उद्बोधन के रूप में ब्र.यशपाल जैन ने कहा कि इसप्रकार के करणानुयोग जैसे गंभीर विषय पर प्रत्येक वर्ष गोष्ठी का आयोजन किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने योगसार प्राभृत के माध्यम से भी कर्म संबंधी विशिष्ट जानकारी दी ।

प्रथम पुरस्कार मनोज जैन अभाना तथा द्वितीय पुरस्कार धर्मेन्द्र जैन बड़ामलहरा, नवीन जैन अहमदाबाद एवं राजेश जैन गुढ़ा ने प्राप्त किया। गोष्ठी का संचालन ऋषिराज जैन बरा ने एवं संयोजन पुलकित जैन कोटा ने किया।

सभी को शुभ कामनायें

जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से समस्त लेखकों, संवाद दाताओं एवं पाठकों को नव वर्ष के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनायें।

विधान एवं कलशारोहण महोत्सव सम्पन्न

शाहगढ़ (सागर): यहाँ श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट शाहगढ़ में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के निर्देशन में दिनांक 6 दिसम्बर से 8 दिसम्बर 2002 तक श्री कलशारोहण महोत्सव, भगवान महावीर पंचकल्याणक विधान एवं याग मण्डल विधान का आयोजन किया गया ।

इस अवसर पर प्रतिष्ठित विद्वान ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित धनसिंहजी 'ज्ञायक' पिड़ावा, पण्डित विजयकुमारजी इन्दौर, पण्डित महेन्द्रकुमारजी सागर के प्रवचनों से महती धर्मप्रभावना हुई ।

दिनांक 6 दिसम्बर को मंगल कलश शोभायात्रा एवं दिनांक 8 दिसम्बर को जिनेन्द्र रथ शोभा यात्रा का विशाल जुलूस नगर से होता हुआ सीमंधर जिनालय पहुँचा। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत रात्रि में लघु नाटिका 'कौण्डेश से कुन्द-कुन्द' का मंचन किया गया ।

अंतिम दिन समापन के समय समाज के गणमान्य व्यक्तियों ने समाज की एकता कायम रखने के संबंध में अपने उद्गार व्यक्त किये । इसके बाद कलशारोहण एवं ध्वजदण्ड की स्थापना विधि सम्पन्न की गई ।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में पण्डित सुबोधकुमारजी शास्त्री शाहगढ़ एवं पण्डित अभिनयकुमारजी शास्त्री जबलपुर ने सम्पन्न कराये। इस आयोजन में विभिन्न स्थानों से 7-8 हजार भाई-बहिनों ने पधारकर धर्मलाभ लिया ।

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

21

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

'हिंसा' की विस्तृत व्याख्या 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' नामक ग्रन्थ में है। वहाँ कहा है कि ह्न 'आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति न होना ही अहिंसा है।' यद्यपि यह कथन भाव हिंसा/अहिंसा की अपेक्षा किया हुआ कथन है; तथापि यह तो निश्चित ही है कि द्रव्य हिंसा का करना किसी के वश की बात नहीं है; क्योंकि कुन्द-कुन्दस्वामी स्वयं ही समयसार के बन्ध अधिकार में लिखते हैं कि ह्न

निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे, जब आयु हर सकते नहीं ।।

हम आयु हर सकते नहीं, तो मरण हमने कैसे किया। इसीप्रकार की एक नहीं अनेक गाथायें हैं। अतः यदि प्रमाद एवं कषायवश हमने मारने या बचाने का अशुभ या शुभभाव किया तो हमें तो उन्हीं भावों का फल प्राप्त होता है। अज्ञानी जीव दिन-रात राग-द्वेष और मोहवश मारने/बचाने के अशुभ-शुभभावों से पाप-पुण्य बाँधता ही रहता है। फलस्वरूप कभी नरक तो कभी स्वर्ग के दुःख-सुख भोगता रहता है। यदि संसार में जन्म-मरण के दुःख नहीं भोगना हों तो इस रौद्रध्यान से बचें। रौद्रध्यान तो अशुभ ही होता है, जिसका फल नरक है।

सब लोगों के समक्ष जब वसु पाताल में चला गया तब सब ओर आकुलता से भरे हा! हा!! धिग्! धिग्!! शब्द गूँजने लगे। जिसे तत्काल असत्य बोलने का फल मिल गया था, उस राजा वसु की सब लोगों ने निन्दा की और दुष्ट पर्वत का तिरस्कार करके उसे नगर से बाहर निकाल दिया। तत्त्ववादी, गंभीर एवं वादियों को परास्त करने वाले नारद को लोगों ने ब्रह्म रथ पर सवार किया तथा उसका सम्मानकर सब यथास्थान चले गये। इधर तिरस्कार पाकर पर्वत भी अनेक देशों में परिभ्रमण करता रहा। अन्त में उसने द्वेषपूर्ण दुष्ट महाकाल नामक असुर को देखा। पूर्वभव में जिसका तिरस्कार हुआ था, उस महाकाल असुर के लिए अपने परभव का समाचार सुनाकर पर्वत उसके साथ मिल गया और दुर्बुद्धि के कारण हिंसापूर्ण शास्त्र की रचना कर लोक में ठगिया बन हिंसापूर्ण यज्ञ का प्रदर्शन करता हुआ प्राणी हिंसा में तत्पर होकर मूर्खजनों को प्रसन्न करने लगा।

अन्त में पापोपदेश के कारण पापरूपी शाप के वशीभूत होने से पर्वत भी मरकर मानो वसु की सेवा करने के लिए नरक ही चला गया।

मंत्रियों ने वसु के आठ पुत्रों को क्रम से एक-दूसरे के बाद उसकी गद्दी पर बैठाया; परन्तु वे भी थोड़े ही दिनों में मृत्यु को प्राप्त हो गये। तदनन्तर जो दो पुत्र बचे, उनमें मृत्यु के भय से भयभीत हो सुवसु तो भागकर नागपुर में रहने लगा और बृहद्ध्वज मथुरा में जा बसा।

बड़े खेद की बात है कि एक ओर तो वसु सत्यजनित प्रसिद्धि को पाकर भी अन्त में मोहवश हिंसा एवं झूठ पापों के प्रचार में कारण बनकर नरक गया तथा अभिमान के वशीभूत हुआ पर्वत भी उसके पीछे नरक में ही गया; वहीं दूसरी ओर सम्यग्दृष्टि दिवाकर नामक विद्याधर मित्र को पाकर एवं पर्वत के मिथ्यामत का खण्डन कर नारद कृत-कृत्य होता हुआ स्वर्ग गया।

जीवों पर दया करना व्यवहार से अहिंसाधर्म है। निरन्तर हिंसा के त्यागरूप ऐसा दयाधर्म का पालन करना और अपने प्राण जाने पर भी जीववध से दूर रहना हिंसा का त्याग है, यही व्यवहार धर्म है। आदरपूर्वक आचरण किया हुआ यह धर्म स्वर्ग और मोक्ष की मोहरूपी अर्गला को भेदकर उत्तम सुख में पहुँचा देता है।

अठारहवें सर्ग में – राजावसु की अनेक आगामी पीढ़ियों का संक्षिप्त परिचय कराते हुए कहा है कि वसु के वृहद्ध्वज और वृहद्ध्वज से सुवाहु नामक धर्मनिष्ठ पुत्र हुआ। वृहद्ध्वज मथुरा का राजा था, उसके पुत्र सुबाहू से दीर्घवायु, दीर्घवायु से वज्रवाहू आदि अनेक राजा हुए, जो अपने-अपने पुत्रों को राज्य देकर जिनदीक्षा लेते रहे।

वर्तमान चौबीसी के बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के धर्मतीर्थ प्रवर्तनकाल में हजारों राजा हुए और प्रायः सबने जिनदीक्षायें ग्रहण कर आत्मा का कल्याण किया।

तदनन्तर 21वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ हुए। भगवान नेमिनाथ की मनुष्यपर्यायकी आयु पन्द्रह हजार वर्ष की थी। इनका धर्मतीर्थ प्रवर्तन पन्द्रह लाख वर्ष तक रहा। इन्हीं के तीर्थकाल हरिवंश रूपी उदयांचल पर सूर्य के समान तेजस्वी 'यदु' नाम का राजा हुआ। यही यदु राजा यादवों की उत्पत्ति का कारण बना।

राजा 'यदु' के 'नरपति' नाम का पुत्र हुआ। उस पर राज्यभार सौंपकर राजा यदु तप करके स्वर्ग गया। राजा नरपति के शूर एवं सुवीर नामक दो पुत्र हुए। नरपति उन्हें राज्य सिंहासन पर बैठाकर तप करने लगा। राजा शूर ने अपने छोटे भाई सुवीर को मथुरा के राज्य पर अधिष्ठित किया और स्वयं ने कुराद्य देश में एक उत्तम शौर्यपुर नामक नगर बसाया।

शूर से अन्धकवृष्णि आदि अनेक शूरवीर पुत्र हुए। अन्धकवृष्णि की सुभद्रा नामक स्त्री से उसके दस पुत्र हुए, जो देवों के समान कान्तिवाले थे तथा स्वर्ग से आये थे। ये सभी पुत्र महाभाग्यशाली थे। इनके सिवाय कुन्ती और मद्री नाम की स्त्रियोचित गुणों से सम्पन्न लक्ष्मी और सरस्वती के समान दो कन्यायें भी थीं।

राजा अन्धकवृष्णि के भाई भोजकवृष्णि की पद्मावती नामक पत्नी से उग्रसेन, महासेन और देवसेन नामक तीन पुत्र हुए। राजा वसु का सुवसु नामक पुत्र जो कुंजरावर्तपुर (नागपुर) में रहने लगा था, उसके वृहद्रथ नामक पुत्र हुआ और वह मागधेशपुर में रहने लगा। वृहद्रथ की परस्पर में लाखों पीढ़ियाँ गुजर जाने के बाद द्वितीय वृहद्रथ नामक राजा हुआ। यह राजा गृह नगर का स्वामी था, जिसके पृथ्वी को वश में करनेवाला जरासंध नामक पुत्र हुआ। जरासंध विभूति में लंकाधिपति रावण के समान त्रिखंडी था तथा नौवां नारायण था। उसके कालयवन आदि अनेक नीतिनिपुण पुत्र एवं अपराजित आदि अनेक भाई थे, जो हरिवंश रूप महावृक्ष की शाखाओं पर लगे फलों के समान थे। राजा जरासन्ध अपनी द्वितीय माता का अद्वितीय वीर पुत्र था। वह राजगृह नगर में रहते हुए दक्षिण श्रेणी में रहनेवाले समस्त विद्याधर और उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ के राजाओं पर शासन करता था। **(क्रमशः)**

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

4

जैसे माला में मोती जिस स्थान पर हैं उसी स्थान पर हैं, आगे-पीछे हो जायें तो माला अखण्ड नहीं रहती; उसीप्रकार जिससमय जिस जन्मक्षण में जो पर्याय क्रमबद्ध होना है वही होगी, दूसरे समय की पर्याय पहले हो और पहले समय की पर्याय बाद में हो - ऐसा है ही नहीं। जिस समय जो पर्याय होना है, उसे काललब्धि कहा जाता है। प्रवचनसार में उसे जन्मक्षण कहते हैं। तथा प्रवचनसार की 99वीं गाथा में अपने-अपने अवसर में पर्याय होती है - ऐसा पाठ है। सर्वज्ञ भगवान भी अपनी क्रमशः जो पर्याय होना है, उसके कर्ता नहीं हैं, ज्ञाता ही हैं।

निःसंदेहरूप से तू ऐसा जान ! कि देह में विराजमान देह से भिन्न परमात्मा तू स्वयं है। राग-द्वेष भिन्न हैं, शरीर भिन्न है, उन्हें तो एक ओर रखो; किन्तु परमात्मा को जाननेवाली जो ज्ञान की पर्याय है, वह भी नाशवान है, उस एक क्षण की क्षणिक पर्याय में अविनाशी प्रभु का वास नहीं है - ऐसा महिमावान त्रिलोकीनाथ सच्चिदानन्द प्रभु तुझसे मिलने आया है, पर्याय से भेंट करने आया है, तूने उसकी उपेक्षा करके, राग के साथ भेंट करके उसका अनादर किया है, उस अनादर का फल अनन्त-संसार है।

जिसने पर्याय के अस्तित्व को ही स्वीकार किया, उसको तू जानता है, इसका दण्ड क्या है? अरे ! त्रैकालिक स्वभाव के अस्तित्व का अस्वीकार हो जाता है। तूने अनादि से पर्याय को ही सत्‌रूप से ह्न अस्तित्वरूप से देखा था, अब उसे भूल जा! और जिस त्रैकालिक स्वभाव को भूल गया था, उसे देख! स्मरण तक! पर्याय की रुचि से अब पूर्ण ज्ञायकभाव दृष्टि में नहीं आता। ज्ञायकभाव की रुचि होने पर ही ज्ञान में संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय का यथार्थ ज्ञान होता है।

साध्य ऐसा जो निज शुद्ध आत्मा, उसके प्रतिच्छंद के स्थान पर सिद्ध भगवंत हैं। द्रव्यस्तुति द्वारा 'हे सिद्ध परमात्मा!' इसप्रकार साध्य तो मात्र अपनी आत्मा में ऐसा ही है; परंतु सिद्ध भगवान साध्य के प्रतिच्छंद के स्थान पर हैं - ऐसे उन सिद्ध परमात्मा के स्वरूप का चिंतवन करके, उस समान अपने स्वरूप को ध्याकर, मेरा द्रव्य सिद्ध समान है, मेरा स्वरूप सिद्धस्वरूप ही है ह्न ऐसे सिद्धस्वरूप निज आत्मा को ध्याकर, संसारी जीव उसके समान हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पूर्व की भूमिका में भी त्रैकालिक ध्रुव आत्मा को ही अधिक अर्थात् पर से भिन्न रखने का पुरुषार्थ करना। समयसार की 31वीं गाथा में आता है ह्न 'णाणसहावाधियं मुणदि आदं....' ज्ञान स्वभाव से आत्मा को अधिक जानता है। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा उनके विषयों में देव-शास्त्र-गुरु भी आ गये ह्न उन सबसे भिन्न अपने पूर्ण ज्ञानस्वभावी आत्मा की निर्मल श्रद्धा सो सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान है।

किसी भी प्रसंग में प्रतिपल ज्ञानानन्दस्वभावी निज भगवान आत्मा को ही अग्र रखना। प्रतिक्षण पूर्णानन्द के नाथ को ह्न ज्ञायक प्रभु को मुख्य रखो। अनादि अज्ञान से जीव को पर्याय की, शुभाशुभ राग की तथा व्यवहार की मुख्यता रही है; उसे छोड़कर, आनन्दकन्द शुद्ध ज्ञायक को पहिचानकर उसी को दृष्टिमें ऊर्ध्व रखो। दृष्टि में से ध्रुवज्ञायक की मुख्यता छूट जायगी तो सम्यग्दर्शन नहीं रहेगा।

नेत्रों की भाँति आत्मा मात्र जानता-देखता ही है; पर को तो करता ही नहीं है, रागादि को भी नहीं करता तथा संवर-निर्जरा और मोक्ष के परिणाम को भी नहीं करता। अहाहा! यह आत्मा तो मात्र उसका ज्ञाता ही है।

जिस समय जो पर्याय होना है, वह होना ही है, यह निश्चय है ह्न उसमें अज्ञानी को शंका होती है कि - ऐसा मानने से तो नियत अर्थात् नियतिवाद का एकांत हो गया? उससे कहते हैं कि ह्न अरे! नियत अर्थात् ऐसा निश्चय है और पर्याय के निश्चय से पर्याय की कर्ताबुद्धि छूट जाती है; इसलिये ज्ञातादृष्टि होती है और ज्ञातापना होना वह क्रमबद्ध का प्रयोजन है।

करना-धरना है ही कहाँ? करूँ-करूँ की दृष्टि ही छोड़ना है। राग को करना तो है ही नहीं; किन्तु आत्मा में अनंत गुण हैं, उनका परिणमन भी प्रतिसमय हो ही रहा है, उसमें भी क्या करेगा? मात्र उसके ऊपर से दृष्टि हटाकर अन्तर में जाना है।

संसारी जीव में सांसारिक गुण अर्थात् विकारी पर्याय होती है और सिद्ध को सदा निर्विकारी पर्याय होती है। विकार या अविकार दशा का अस्तित्व पर्याय में है। वर्तमान वर्तती परिणति में उन-उन पर्यायों की अस्ति है अवश्य; तथापि वे वस्तुस्वभाव में नहीं हैं, त्रैकालिक ध्रुवसामान्य एकरूप द्रव्य में तो उनकी अस्ति है ही नहीं।

चैतन्यपिण्ड ज्ञानसूर्य तो मात्र ज्ञाता ही है, उसे रागादि से कोई लगाव नहीं है, वह परिपूर्णता से हटा ही नहीं है; राग स्वरूप हुआ ही नहीं है। वह राग को छोड़ता है - ऐसा जो कहा जाता है, वह भी नाममात्र कथन है।

अरे प्रभु! तुझमें प्रभुता विद्यमान है, तू स्वयं ही प्रभु है! तेरे उदर में परमात्मपना विद्यमान है, उसमें से संसार की उत्पत्ति हो - ऐसी शक्ति ही तुझमें नहीं है।

भाई! इस समय तो अपना कार्य कर लेने जैसा है। अरे! माँ-बाप, भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धी आदि मरकर कहाँ गये होंगे? उसकी कोई खबर है? अरे! मुझे अपने आत्मा का हित कर लेना है ह्न ऐसा अंतर से लगना चाहिये। अहाहा! सगे-सम्बन्धी सब चले गये, उनके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव सब बदल गये। शरीर के अनन्त रजकण कब/कहाँ/क्या होंगे उसकी खबर है? इसलिये जो जागता रहेगा वह बचेगा।

भाई! तू ज्ञायक ही है ऐसा निर्णय कर! वैसे तो तू ज्ञायक ही है; परन्तु उस ज्ञायक का निर्णय वर्तमान श्रद्धा एवं ज्ञान में करना है; अतः उस द्रव्य पर लक्ष ले जा। वहाँ से पुरुषार्थ प्रगट होता है। कुछ नवीन कार्य नहीं करना है; किन्तु जब द्रव्य पर दृष्टि जाती है, तब जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा जानता है। पर का तो कुछ बदलना ही नहीं है और स्व का भी कुछ फेरफार नहीं करना है। स्व का निर्णय करने पर दिशा ही पलट जाती है। वास्तव में तो परोक्ष ज्ञान है, वह भी ज्ञाता ही है।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा कार्यक्रम सत्र-2002-03

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
शुक्रवार 24 जनवरी 2003	1. बालबोध पाठमाला भाग-1 (बा.प्रथम खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग-1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग1(प्रवेशिका प्रथम खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (बरैयाजी) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
शनिवार 25 जनवरी 2003	1. बालबोध पाठमाला भाग-2 (बा.द्वितीय खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग-2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग2(प्रवेशिका द्वितीय खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष) 10. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष)
सोमवार 27 जनवरी 2003	1. बालबोध पाठमाला भाग 3 (बा.तृतीय खण्ड) मौखिक 2. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 3 (प्रवेशिका तृतीय खण्ड) 3. रत्नकरण्डश्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट -

(1) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह 9 बजे से शाम 5 बजे तक के बीच में कभी भी सैट किया जा सकता है।

(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

(3) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग 1 व 2 की परीक्षायें मौखिक में लेवें।
शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।

धर्म प्रभावना

शिरडशहापुर (महा.) - यहाँ 1008 श्री मल्लिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र शिरडशहापुर में पण्डित प्रशांतजी शास्त्री द्वारा महती धर्म प्रभावना हुई।

आपके प्रात: रत्नकरण्डश्रावकाचार के सल्लेखना अधिकार पर वैराग्यपूर्ण प्रवचन हुये। दोपहर में स्थानीय विद्वान पण्डित रमेशचन्दजी महाजन द्वारा जिनागमसार पर मार्मिक प्रवचन हुये। सायंकाल बालकक्षा एवं जिनेन्द्र भक्ति होती थी। रात्रि में ज्ञानार्णव के आधार से 12 भावनाओं पर वैराग्यपूर्ण प्रवचन हुये।

रात्रि में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजिन सौ. स्मिता एवं श्री नाभिराज महाजनद्वय ने किया। **- भानुराज महाजन**

विधान सानन्द सम्पन्न

1. अजमेर (राज.) : यहाँ सीमंधर जिनालय, पुरानी मण्डी में रविवार, दिनांक 22 दिसम्बर 2002 को पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलिया के निर्देशन में पण्डित सुनीलकुमारजी शास्त्री सुल्तानपुर व पण्डित चिन्मयकुमारजी शास्त्री पिड़ावा द्वारा भक्तामर विधान कराया गया। साथ ही पण्डितजी द्वारा जयमाला का अर्थ भी समझाया गया ।

2. सिंगोली (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 30 नवम्बर से 2 दिसम्बर 2002 तक श्री चाँदमलजी दीपेशकुमारजी मोहिवाल परिवार द्वारा भक्ति संगीत के साथ श्री एक सौ सत्तर तीर्थंकर मण्डल विधान का आयोजन किया गया ।

इस अवसर पर पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलिया, पण्डित राजकुमारजी बांसवाड़ा, पण्डित संजयकुमारजी भैसरोडगढ़ एवं पण्डित राकेशकुमारजी परतापुर के प्रात:, दोपहर एवं सायं प्रवचन हुए। सभी कार्यक्रमों में आसपास के गॉवों के लोगों ने पधारकर धर्म लाभ लिया।

जैसलपार्क (मुंबई) में पाठशाला एवं प्रवचन प्रारंभ

मुंबई के उपनगर भाइंदर (ईस्ट) के जैसलपार्क तेरापंथी मंदिर में महाविद्यालय के स्नातक छात्र पण्डित फूलचंदजी शास्त्री उमराला एवं पण्डित प्रवेशकुमारजी शास्त्री करेली द्वारा सायंकालीन दैनिक पाठशाला का शुभारंभ किया गया । ज्ञातव्य है कि यहाँ रात्रि में प्रतिदिन मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन चलते हैं, जिससे समाज में उत्साह का माहौल बना है। **- महेन्द्र जैन**

पाठशाला पारितोषिक वितरण समारोह

शुजालपुर (शाजापुर) : यहाँ श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के पारितोषिक वितरण समारोह की अध्यक्षता श्री पदमकुमार जैन ने की। इस अवसर पर वयोवृद्ध समाजसेवी चमेलीदेवी ने अपने विचार व्यक्त किये।

पाठशाला अध्यापक श्री निलेश जैन ने बताया कि पाठशाला के 40 बच्चों को अब तक विगत 1 वर्ष में जिनधर्म प्रवेशिका एवं बालबोध के तीनों भागों के माध्यम से धार्मिक एवं नैतिक अध्ययन कराया गया। पुरस्कार वितरण श्री राजेन्द्र जैन एवं श्री नेमीचन्द जैन ने किया। कार्यक्रम का संचालन श्री अशोक जैन द्वारा किया गया। **- अनुराग जैन**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

ग्वालियर	- 13 से 19 जनवरी 2003	पंचकल्याणक
अजमेर/किशनगढ़	- 22 से 26 जनवरी 2003	व्यक्तिगत कार्य
अलीगढ़	- 31 जनवरी से 6 फरवरी 2003	पंचकल्याणक
दिल्ली	- 8 एवं 9 फरवरी 2003	अधिवेशन-विद्वत्परिषद
कोटा	- 14 एवं 15 फरवरी 2003	शिलान्यास

मध्यप्रदेश

सिहौनिया (अतिशय क्षेत्र)

सिहौनिया अतिशय क्षेत्र मुरैना (आगरा-ग्वालियर मार्ग पर) से 30 कि.मी.दूर है। मुरैना से बसें चलतीं हैं । बसें सिहौनिया गांव केबाहर थाने पर रुकतीं हैं। थाने से सिहौनिया क्षेत्र लगभग एक कि.मी.है।

यहाँ भगवान शान्तिनाथ की 5 मीटर ऊँची भव्य प्रतिमा है। इस प्रतिमा के दोनों ओर भगवान कुन्थुनाथ और भगवान अरनाथ की प्रतिमा है। यहाँ भूगर्भ से कुछ अन्य प्रतिमायें भी प्राप्त हुई हैं, जो दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की बताई जाती हैं । ठहरने के लिये धर्मशाला की व्यवस्था है।

ग्वालियर

यह आगरा और झांसी के बीच स्थित है। यह मध्य रेल्वे का प्रमुख स्टेशन और भारत का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। आगरा से 118 कि.मी. तथा झांसी से 97 कि.मी.है। यहाँ 4 मंदिर, 4 चैत्यालय और 2 जैन धर्मशालाएँ हैं।

लश्कर में 20 मंदिर, 3 चैत्यालय और 9 धर्मशालाएँ हैं। मुरार में 2 मंदिर, 2 चैत्यालय और एक धर्मशाला है। नई सड़क लश्कर की महावीर धर्मशाला सर्वाधिक संपन्न है। यहाँ 5000 हजार वर्ष पुराने किले में लगभग 1500 जैन मूर्तियाँ है, जो कि अत्यंत भव्य एवं दर्शनीय हैं। सबसे विशाल भगवान आदिनाथ की 17.5 मीटर ऊँची खड्गासन मूर्ति है। दूसरी विशाल प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की 10.5 मीटर उँची, जो कि पत्थर की बावड़ी में है। उरवाही समूह में 40 खड्गासन, 24 पद्मासन प्रतिमाएँ तथा और दीवारों में उकेरी हुई 840 प्रतिमाएँ हैं।

मनहरदेव(अतिशय क्षेत्र)

ग्वालियर जिले में स्थित यह एक अतिशय क्षेत्र है। यह मध्य रेलमार्ग के आंतरी और उवरामंडी स्टेशनों से 10 कि.मी.है। चिनौर तक पक्की सड़क है, फिर 5 कि.मी.की कच्ची सड़क है। यहाँ एक छोटी सी पहाड़ी पर एक जैन मंदिर तथा 11 अन्य जीर्णावस्था में हैं। उसकी तलहटी में भी दो मंदिर हैं । पर्वत पर स्थित मंदिर में मूलनायक भगवान शांतिनाथ की अतिशय सम्पन्न प्रतिमा साढ़े चार मीटर ऊँची है।

सोनागिरि(सिद्ध क्षेत्र)

सोनागिरि को स्वर्णगिरि, श्रमणगिरि आदि नामों से भी जाना जाता है। यहाँ से लगभग पांच कोटी मुनि मुक्त हुए हैं। यहाँ अनेक मुनियों को केवलज्ञान हुआ। भगवान चंद्रप्रभ का समवसरण भी यहीं आया था। यह क्षेत्र मध्य रेल्वे के सोनागिरि स्टेशन से 5 कि.मी.और दतिया से 11 कि.मी.है। स्टेशन से क्षेत्र तक का मार्ग पक्का है। ग्वालियर से सीधी बस सेवा भी है। बस क्षेत्र के फाटक तक जाती है।

पहाड़ पर 77 जैन मंदिर 13 छतरियाँ हैं। मंदिर नं.57, जिसमें भगवान चंद्रप्रभ की 3 मीटर ऊँची मूलनायक प्रतिमा है तथा यही यहाँ का मुख्य मंदिर है। मंदिर अतिविशाल और मूर्ति अति भव्य एवं अतिशय संपन्न है। मंदिर के निकट एक छतरी में नंग-अनंग मुनियों के चरणचिह्न अंकित हैं। तलहटी में 17 मंदिर, 5 छतरियाँ और 15 धर्मशालाएँ हैं।

आचार्य गुणधर और कसायपाहुड

श्रुतधराचार्यों की परंपरा में सर्वप्रथम आचार्य गुणधर का नाम आता है। आचार्य गुणधर श्रुतप्रतिष्ठापक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनको 'पंचमपूर्वगत पेज्जदोसपाहुड' के अतिरिक्त 'महाकम्मपयडिपाहुड' का भी ज्ञान प्राप्त था, जिसका समर्थन कसायपाहुड से होता है।

आचार्य गुणधर के समय के संबंध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि इनका समय धरसेन आचार्य के पूर्व है तथा अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका समय वि.पू. प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

गुणधराचार्य ने 180 गाथाओं प्रमाण 'कसायपाहुड (पेज्जदोसपाहुड)' की रचना की है, जिसे बाद में यतिवृषभाचार्य ने 6000 चूर्णसूत्रों एवं 15 अधिकारों में निम्नप्रकार विभाजित किया है -

1.प्रकृति-भक्ति - इसका अन्य नाम 'पेज्जदोस-विभक्ति' है,क्योंकि कषाय, पेज्ज अर्थात राग-द्वेषरूप होती है। इसमें राग-द्वेष का विवेचन द्वादशअनुयोग द्वारों में किया जाता है।

2.स्थिति-विभक्ति - इस अधिकार में कर्मों की स्थितिबंध के साथ प्रकृतिबंध का भी कथन सम्मलित है।

3.अनुभाग-विभक्ति - इसमें कर्मो की फलदान शक्ति वर्णित है। इसके 2 भेद हैं- मूलप्रकृति-अनुभाग-विभक्ति व उत्तरप्रकृति-अनुभाग-विभक्ति।

4.प्रदेश-विभक्ति - इसमें प्रदेश बंध का वर्णन है। इसके दो भेद हैं, प्रथम बंध के समय प्राप्त द्रव्य और द्वितीय बंध होकर सत्ता में स्थित द्रव्य।

5.बंधकाधिकार - इसमें बंध और संक्रम का वर्णन किया गया है।

6.वेदकाधिकार - इसमें यह बताया गया है कि यह संसारी जीव मोहनीय कर्म और उसके अवान्तर भेदों का कहाँ, कितने कालतक, सान्तर या निरन्तर किस रूप में वेदन करता है ? इस अधिकार के 2 भेद हैं। उदय व उदीरणा।

7. उपयोगाधिकार - इस अधिकार में क्रोध, मान, माया और लोभ - इन चारों कषायों के उपयोग का व्याख्यान किया गया है।

8. चतु:स्थानाधिकार - इसमें घातिया कर्मो की फलदान शक्ति का विवरण लता, दारु, अस्थि और शैलरूप उपमा देकर किया गया है।

9. व्यंजनाधिकार - इस अधिकार में क्रोध, मान, माया और लोभ - इन चारों ही कषायों के पर्यायवाची शब्दों का प्रतिपादन किया गया है।

10. दर्शनमोहोपशमनाधिकार - इसमें दर्शनमोह के उपशम का तथा अन्त में प्रथमोपशम सम्यक्त्वी के विशिष्ट कार्यों और अवस्थाओं का वर्णन है।

11. दर्शनमोहक्षपणाधिकार - इसमें दर्शनमोह के क्षपण की प्रक्रिया और तत्सम्बन्धी साधन-सामग्री का निरुपण किया गया है।

12. संयमासंयमलब्धि अधिकार - इसमें संयमासंयमलब्धि के लिये आवश्यक साधन-सामग्रियों का विस्तारपूर्वक कथन किया है।

13. संयमलब्धि अधिकार - इसमें संयम को धारण करने के लिये आवश्यक सामग्री का वर्णन किया गया है।

14. चारित्रमोहोपशमनाधिकार - इसमें प्रथम 4 गाथाओं में उपशामक का तथा शेष 4 गाथाओं में उपशामक के पतन के संबंध में प्रश्न किये गये हैं।

15. चारित्रमोहक्षपणाधिकार - यह अंतिम अधिकार बहुत विस्तृत है, इसमें चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय का वर्णन विस्तार से किया गया है।

वीरसेनाचार्य ने जयधवला टीका में लिखा है - 'कषायपाहुड का विषय आचार्य गुणधर को तीर्थंकर महावीर की आरातीय परम्परा से प्राप्त हुआ है।'

चूँकि आगम अध्यात्म का हेतु होता है; अत: यह आगम ग्रन्थ भी अध्यात्म को दृढ़ करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। **-प्रवीण शास्त्री, रायपुर**

तत्त्वचर्चा

समयसार का सार

60

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

सत्रहवाँ प्रवचन

समयसार परमागम में निर्जराधिकार का प्रकरण चल रहा है। पूर्व में यह कहा था कि जो द्रव्यकर्म बंधे थे, उनका उदय में आकर या उदीरणा होकर खिर जाना यह द्रव्यनिर्जरा है एवं आत्मा के अंतर में जो अशुद्धि है उसका कम होना एवं शुद्धि की वृद्धि होना भावनिर्जरा है। इसके सामान्य विश्लेषण के पश्चात् यह कहा गया था कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा को भोगों के संयोग में भी निर्जरा होती है एवं अज्ञानी जीव कितने ही व्रत–तप करे; पर उसके निर्जरा नहीं होती। इससे यह सिद्ध होता है कि बाह्य क्रियाकाण्ड जिसे हम तप–त्याग का नाम देते हैं, उससे निर्जरा नहीं होती है; क्योंकि वह तो स्पष्टरूप से परद्रव्य की क्रिया है। इसके साथ जो भी भाव होंगे, वे परद्रव्य के लक्ष्य से ही होंगे एवं परद्रव्य के लक्ष्य से जो भी भाव होंगे वे या तो शुभ होंगे या अशुभ।

यह तो सभी जानते हैं कि अशुभभाव से पापबंध होता है; अतः निर्जरा नहीं होती है। शुभभाव से पुण्यबंध होता है; अतः उससे भी निर्जरा संभव नहीं है; परन्तु ज्ञानी के निज भगवान आत्मा का आश्रय है; अतः जितनी कर्म प्रकृतियों का आस्रव और बंध रुक गया है; यदि वे प्रकृतियाँ, सत्ता में होवें तो भी किसी न किसी प्रकार से काल पाकर उदय में आकर खिर जानेवाली हैं। ज्ञानी के नवीन बंध नहीं होता है; इसलिए उसे निर्जरा कहते हैं।

कर्म के झरने की क्रिया का नाम निर्जरा है और वह ज्ञानी–अज्ञानी सभी के होती है; इसी प्रकरण के संदर्भ में छहढाला की यह पंक्ति उल्लेखनीय है –

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।

अपनी–अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्म खिर जाते हैं, यह निर्जरा तो है; लेकिन इससे जीव का कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता है – ऐसा तो अनादिकाल से हो रहा है। यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि ज्ञानी के पूर्व में बंधे हुए कर्म प्रतिसमय उदय में आ रहे हैं, खिर रहे हैं एवं नए बंधते नहीं हैं; इसलिए उसे निर्जरा कहते हैं – ऐसी निर्जरा चतुर्थगुणस्थान से ही विद्यमान है। तत्त्वार्थसूत्र के नौवें अध्याय में कहा है कि –

'सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशम कोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।

सम्यग्दृष्टि, पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक, विरत मुनी, अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करनेवाला, दर्शनमोह का क्षय करनेवाला, उपशमश्रेणी माँडनेवाला, उपशांतमोह, क्षपकश्रेणी माँडनेवाला, क्षीणमोह और जिन – इन सबके (अंतर्मुहूर्तपर्यन्त परिणामों की विशुद्धता की अधिकता से आयुकर्म को छोड़कर) प्रतिसमय क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।''[1]

यहाँ ऐसा तो नहीं लिखा है कि जब शुद्धोपयोग होगा, तब निर्जरा होगी; इसप्रकार सम्यग्दृष्टि के निर्जरा प्रतिसमय है, निरंतर विद्यमान है।

ज्ञानी के ज्ञान का सामर्थ्य और वैराग्य का बल ही है कि जिसके कारण ज्ञानी के निरन्तर निर्जरा विद्यमान है।

बंधे न ज्ञानी कर्म से बल विराग अर ज्ञान।
यद्यपि सेवें विषय को, तदपि असेवक जान।।135।।

दो उदाहरणों के माध्यम से आचार्य ने 'ज्ञान की सामर्थ्य और वैराग्य के बल' को समझाया है। जिसप्रकार वैद्य जहर खाकर भी मरता नहीं है; उसीप्रकार ज्ञानी भी ज्ञान के सामर्थ्य के कारण भोग भोगते हुए भी बंध को प्राप्त नहीं होता है। जिसप्रकार शराब पीनेवाला यदि अरुचि भाव से शराब पीता है तो उसे शराब नहीं चढ़ती है; ऐसे ही वैराग्य का बल जिनके है – ऐसे ज्ञानी के पूर्व कर्मोदयानुसार भोगादिक की क्रिया देखी जाती है तो भी वह वैराग्य के बल से बंध को प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकरण का तीसरा उदाहरण यह था कि भले ही काम करनेवाले अनेक लोग हों; लेकिन जो उसे करानेवाला है, आज्ञा देनेवाला है, जो उसका मालिक है, जिसके लिए काम किया जा रहा है; वही प्राकर्णिक उसका कर्त्ता–भोक्ता है, अन्य उसके कर्त्ता–भोक्ता नहीं हैं। यहाँ तक तो बात हो चुकी है।

अब आगे कहते हैं कि इस प्रकरण को पढ़कर कोई व्यक्ति यह माने कि मैं तो सम्यग्दृष्टि हूँ और सम्यग्दृष्टि को भोग भोगते हुए भी आस्रव नहीं होता और निर्जरा होती है; अतः मैं भोगों से क्यों डरूँ, जमकर भोग भोगूँ ?

उससे आचार्य कहते हैं कि – ऐसी जिनकी बुद्धि है, वे सम्यग्दृष्टि ही नहीं हैं; क्योंकि सम्यग्दृष्टि के तो भोगों में से सुखबुद्धि निकल गई है; परन्तु कर्म के उदय से उसके जीवन में भोग देखे जाते हैं। 'मैं खूब भोगूँ' – ऐसी भावना त्रिकाल में भी सम्यग्दृष्टि की नहीं होती है। सम्यग्दृष्टि के तो 'इन भोगों से मैं कब छूटूँ' – ऐसी भावना बनी रहती है।

जब सबसे पहले मैंने यह बात पढ़ी, तब मुझे यह विकल्प आया कि ऐसा भी सोचनेवाला कोई होता होगा ? परंतु एक प्रसंग ऐसा घटित हुआ कि जिसे उद्धृत करने से यह प्रकरण सरलता से समझ में आ जाएगा।

एक बार मुझे एक मुनिराज से मिलने का मौका मिला। वे बोले – हमें आप बताइये कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कैसे हो ?' तब मैंने कहा – 'महाराज, सम्यग्दर्शन के बिना तो व्रत–चारित्र होते ही नहीं हैं। तब महाराज ने कहा – 'भैय्या ! हमें क्या पता! हम क्या जानें ? तब मैंने उनसे कहा – 'शास्त्र में ऐसा लिखा है कि मुनिधर्म तो इसके बिना होता ही नहीं है।' तब वे

1॰ मोक्षशास्त्र, अध्याय–9, सूत्र–45

बड़े ही भोलेपन से बोले – यदि मुनि के सम्यग्दर्शन होता है तो मुझे भी होगा ही। तुम बताओ सम्यग्दर्शन कैसे होता है ? यदि हमें सम्यग्दर्शन नहीं होगा तो हम उसे प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।'

यह तो बहुत ही स्पष्ट है कि जो स्वयं को व्रती मानता है, वह स्वयं को सम्यग्दृष्टि भी मानता है; क्योंकि शास्त्रों में यह स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्दर्शन चतुर्थगुणस्थान में होता है एवं व्रत पंचमगुणस्थान से प्रारम्भ होते हैं।

ऐसे भी कई व्यक्ति हैं जो व्रती नहीं हैं; लेकिन स्वयं को सम्यग्दृष्टि मानते हैं; परंतु सम्यग्दर्शन क्या है ? इसकी उन्हें खबर ही नहीं है – ऐसे लोगों के लिए आचार्य यहाँ सावधान करते हैं।

मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ और सम्यग्दृष्टि को कोई बंध नहीं होता है; इसलिए मुझे भी बंध नहीं होगा। इनकी कैसी स्थिति होती है इसके संदर्भ में मूल संस्कृत में ऐसा लिखा है –

(मन्दाक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बंधो न मे स्या–,
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलंबंता समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा,
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।।137।।

(हरिगीत)

मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ, हूँ बंध से विरहित सदा।
यह मानकर अभिमान में पुलकित वदन मस्तक उठा।।
जो समिति आलंबे महाव्रत आचरें पर पापमय।
दिग्मूढ़ जीवों का अरे जीवन नहीं अध्यात्ममय।।137।।

मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ, मुझे कभी बन्ध नहीं होता – ऐसा मानकर जिनका मुख गर्व से ऊँचा और पुलकित हो रहा है – ऐसे रागी जीव भले ही महाव्रतादि का आचरण करें तथा समितियों की उत्कृष्टता का आलंबन करें तथापि वे पापी ही हैं; क्योंकि वे आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से रहित होने से सम्यक्त्व से रहित हैं।

मैं सम्यग्दृष्टि हूँ और मुझे बंध नहीं होगा – ऐसा मानकर उठाया है मुख जिसने और फुलाए हैं गाल जिसने – ऐसा कहकर आचार्य इसके अभिमान की मुद्रा की ओर संकेत कर रहे हैं। ऐसी मुद्रा में वह मन ही मन में स्वयं को बहुत महान मानता है। फुलाए हैं गाल अर्थात् 'मैं सम्यग्दृष्टि हूँ मुझे बंध नहीं होगा, मैं महाव्रती हूँ, मैं जो कहूँगा वही होगा; ऐसे गाल फुलाकर एकदम जोश में बोलता है।

ऐसा स्वयं को मानता हुआ वह राग का आचरण करता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यहाँ प्रकरण सम्यग्दृष्टियों का चल रहा है; यहाँ मुनिराजों को मध्य में क्यों लाते हो ?

अरे भाई ! समिति को तो मुनि ही पालते है, गृहस्थ नहीं पालते हैं। जो गुप्ति को पालते हैं, जो तप तपनेवाले हैं – ऐसे मुनिराज ही हुए।

जो समिति को पालते हैं। जो अहिंसा, सत्य, अचौर्यादि महाव्रतों को पालते हैं, जो स्वस्त्री के भी त्यागी हैं, जिनके पास लेशमात्र भी परिग्रह नहीं है – ऐसे मुनियों को आचार्य कह रहे हैं कि वे आज भी साक्षात् पापस्वरूप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इनमें से कोई भी पाप इनके नहीं हैं; लेकिन तब भी वे पापी क्यों हैं ?

आचार्य कहते हैं कि ये पाप इनके नहीं हैं; लेकिन जो पाप का बाप है – ऐसा मिथ्यात्व तो इनके विद्यमान है ही। पर में एकत्व, ममत्व, कर्त्तृत्व एवं भोक्तृत्वबुद्धि, जिनके विद्यमान है – यहाँ ऐसे मिथ्यादृष्टियों का प्रकरण चल रहा है। यहाँ उन मिथ्यादृष्टियों का प्रकरण नहीं है, जो स्वयं को मिथ्यादृष्टि स्वीकार करते हैं। यहाँ उनका प्रकरण चल रहा है जो मिथ्या–दृष्टि हैं एवं स्वयं को सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, महाव्रती मानते हैं।

व्रतादिक का आलम्बन लेते हैं, समिति का पालन करते हैं; परंतु तब भी वे पापस्वरूप हैं; क्योंकि वे आत्मा के अवगाहन से विरहित हैं। उन्होंने आत्मा को नहीं जाना है, आत्मा को नहीं देखा है – ऐसे जीव सम्यग्दर्शन से रहित हैं; लेकिन तब भी वे स्वयं को आध्यात्मिक मानते हैं। आचार्य उन्हें दिग्मूढ़ कहते हैं।

दिग्मूढ़ अर्थात् जिन्हें कहाँ जाना है, इसका ज्ञान नहीं है। पूर्व दिशा की तरफ जाना है और जा रहे हैं पश्चिम दिशा की तरफ। आत्मा की ओर जाना है और जा रहे हैं पर की तरफ। शुद्धोपयोग की ओर जाना है; परंतु जा रहे हैं शुभोपयोग की ओर – इसप्रकार इन्हें अपनी दिशा का सत्यार्थ ज्ञान नहीं है; इसलिए आचार्य इन्हें दिग्मूढ़ कहते हैं।

प्रश्न :– प्रथम तो सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा हेतु हैं – ऐसा कहते हैं और अब यहाँ समिति पालनेवाले को, महाव्रतधारी को दिग्मूढ़ कह रहे हैं, पापी कह रहे हैं; हमें तो कुछ भी समझ में नहीं आता !

उत्तर :– यह हम थोड़े ही कह रहे हैं, यह महाव्रतधारी अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कह रहे हैं। हम तो मात्र उनके द्वारा लिखित छन्द का अर्थ कर रहे हैं। जो स्वयं समिति को पालते हैं एवं पंचमहाव्रतधारी – ऐसे अमृतचंद्राचार्य हैं, वे स्वयं यह कथन कर रहे हैं कि यदि आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट है तो भोगों के मध्य रहते हुए भी उसे बंध नहीं होता; वह पापी नहीं है; परंतु यदि आत्मा सम्यग्दर्शन से रिक्त है और समिति पाले, महाव्रत आचरे तो भी वह पापी है – ऐसे जीव को रंचमात्र भी निर्जरा नहीं है। यदि बाह्यक्रिया व शुभभाव के आधार पर रंचमात्र भी निर्जरा होती तो सम्यग्दर्शन से रिक्त महाव्रतधारियों के निर्जरा अवश्य होती; अतः यह सिद्ध है कि शुभभाव और बाह्य क्रिया मात्र निर्जरा के कारण नहीं हैं।

अंत में इसी निर्जराधिकार में आचार्य ने सम्यग्दृष्टि के आठ अंगों का वर्णन किया है। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

फैडरेशन की टेबल से -

बीते वर्ष फैडरेशन की शाखाओं द्वारा किये गये विशिष्ट कार्यों का ब्योरा इस कालम के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। सभी शाखाओं से एतदर्थ वार्षिक रिपोर्ट आमंत्रित है।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की शाखायें पूरे देश में तत्त्वप्रचार-प्रसार की गतिविधियों में अनवरत संलग्न हैं।

दिल्ली में फैडरेशन की समस्त गतिविधियाँ आत्मार्थी ट्रस्ट के बैनरतले आयोजित की जाती हैं। दिल्ली के 4 जोनों (पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी) में स्थित सभी शाखायें मिलकर सामाजिक, धार्मिक गतिविधियों का संचालन कर सैंकड़ों साधर्मी बन्धुओं को लाभान्वित कर रही है।

दिल्ली प्रान्त में फैडरेशन की शाखायें प्रदेशाध्यक्ष श्री आदीश जैन एवं मंत्री श्री राकेश जैन शास्त्री के नेतृत्व में अशोक गोयल, संदीप शास्त्री, ऋषभ शास्त्री उस्मानपुर, संजीव जैन उस्मानपुर आदि अनेक कार्यकर्ताओं के सहयोग से सक्रियता से कार्य कर रही है। वर्ष 2002 में दिल्ली प्रदेश फैडरेशन द्वारा आयोजित महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

जनवरी 2002 में आत्मार्थी ट्रस्ट के प्रांगण में सम्मेदशिखर विधान का आयोजन। नव वर्ष के प्रसंग पर उस्मानपुर, शिवाजीपार्क, शंकरनगर, राजपुर रोड, रघुवीरपुरा, नांगलोई, पुष्पांजली आदि स्थानों पर दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पाठशालाओं एवं स्वाध्याय का संचालन।

फरवरी 2002 में आत्मार्थी ट्रस्ट की वर्षगांठ पर महावीर पंचकल्याणक विधान का आयोजन तथा आत्मार्थी आयुर्वेदिक औषधालय में हेपेटाईटिस-बी टीकाकरण शिविर का आयोजन।

मार्च 2002 में अष्टान्हिका पर्व पर शिक्षण-शिविर एवं सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन। आँखों की नि:शुल्क जांच, मोतियाबिन्द का ऑपरेशन शिविर। तथा दिलशाद पंचकल्याणक में सक्रिय योगदान।

अप्रेल 2002 में सरोजनी नगर में पंचकल्याणक का आयोजन तथा जनकपुरी, नांगलराया, अशोकविहार तथा बहादुरगढ़ में विधान आयोजित।

मई 2002 में पूज्य गुरुदेवश्री की 113वीं जन्मजयन्ती 'उपकार-दिवस' मनाया। सागरपुर (नांगलराया), नांगलोई, पुष्पान्जली, जनकपुरी में बाल संस्कार शिक्षण-शिविरों का आयोजन।

जून 2002 में पुष्पांजली, सरधना, जनकपुरी-बी-1, बहादुरगढ़, लारेंस रोड, पश्चिम विहार में बाल संस्कार शिविरों का आयोजन। श्रुतपंचमी पर कैलाशनगर, बहादुरगढ़ में श्रुतस्कंध विधान एवं 'जिनवाणी सजाओ' प्रतियोगिता का भव्य आयोजन ।

जुलाई 2002 में सोनगढ़ से पधारे यात्रा संघ का भव्य स्वागत। शिखर शिलान्यास समारोह । जैन स्कालर्स 2002 (सीनियर सैकण्डरी) अवार्ड आयोजित। केन्द्रीय श्रममन्त्री डॉ. साहिबसिंह वर्मा का अभिनन्दन।

अगस्त 2002 में नवीन पाठशालाओं का संचालन। बहादुरगढ़ शाखा द्वारा आंखों की नि:शुल्क जांच एवं मोतियाबिन्द शिविर का आयोजन।

सितम्बर 2002 में दिल्ली महानगर एवं आस-पास के क्षेत्रों में दसलक्षण पर्व के अवसर पर लगभग 55 स्थानों पर विद्वानों की व्यवस्था। आत्मार्थी ट्रस्ट के प्रांगण में विद्वत् सम्मान समारोह का भव्य आयोजन।

अक्टूबर 2002 में जयपुर शिविर एवं फैडरेशन राष्ट्रीय अधिवेशन में विशेष भागीदारी। उस्मानपुरा शाखा द्वारा उस्मानपुरा में स्वाध्याय भवन निर्माण एवं गोष्ठी का आयोजन । **- राकेश शास्त्री, मंत्री-दिल्ली प्रदेश**

वैराग्य समाचार

चैन्नई निवासी श्री भण्डारी भभूतमलजी के भाई श्री मनोहर जी भण्डारी का 42 वर्ष की उम्र में मंगलवार, दिनांक 10 दिसम्बर को शांतभाव से देहविलय हो गया है। आप बड़े ही धर्मात्मा, अत्यन्त सरल एवं शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। आपके पिता श्री भूरामल जी ने सायला (राज.) में जयपुर विचारधारा वाले मुमुक्षु समाज के लिए एक जिनमंदिर बनाकर राजस्थान के उस प्रान्त में तत्त्वधारा के प्रचार का कार्य शुरू किया, जिसको आपने बमुखी निभाया एवं आजीवन न्याय-नीतिपूर्वक व्यापार करके धर्म आराधना में समय व्यतीत किया।

दिवंगत आत्माशीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है ।

जनवरी-03 में आनेवाली 24 तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियाँ

13 जनवरी	-	भगवान शान्तिनाथ का ज्ञानकल्याणक
14 जनवरी	-	भगवान अजितनाथ का ज्ञानकल्याणक
17 जनवरी	-	भगवान अभिनन्दननाथ का ज्ञानकल्याणक
18 जनवरी	-	भगवान धर्मनाथ का ज्ञानकल्याणक
23 जनवरी	-	भगवान पद्मप्रभ का गर्भकल्याणक
29 जनवरी	-	भगवान शीतलनाथ का जन्म एवं तप कल्याणक
31 जनवरी	-	भगवान ऋषभदेव का मोक्षकल्याणक

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) जनवरी (प्रथम) 2003
आई. आर. / R. J. **3002/02**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127